|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 16: दैवासुरसंपद्विभागयोग

2/2 (श्लोक 9-24), शनिवार, 27 अप्रैल 2024

विवेचक: गीता विदूषी सौ वंदना जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/-WowbMqgCrM

सद्गुणों का सङ्क्रमण ही आसुरी गुणों से बचाव का उपाय

दीप प्रज्वलन, अति सुन्दर प्रार्थना एवम् गुरु वन्दना के पश्चात् आज का सोलहवें अध्याय के उत्तरार्ध का विवेचन सत्र प्रारम्भ हुआ।

श्रीमद्भगवद्गीता विषण्ण जीवात्माओं को प्रसन्न करने वाला अद्भुत गीत है जो भगवान के मुखारविन्द से प्रत्यक्ष में प्रवाहित हुआ और अर्जुन को निमित्त बनाकर भगवान ने वो शाश्वत ज्ञान की धारा हम सबके लिए बहाई। जो पाँच हज़ार वर्ष पूर्व भगवान के मुखारविन्द से प्रवाहित हुआ वह आज भी हमारे जीवन में प्रेरणास्रोत के रूप में जीवन का उन्नयन करने में सक्षम है। मनुष्य क्यों अधोगति की ओर जाता है, क्यों विषादग्रस्त होता है? और किस तरह से उस शोक से निकल कर स्वंय को सँवारकर, कैसे कल्याण के मार्ग पर अग्रसर हो सकता है, इस बात का पाथेय श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित है, ऐसा यह अद्भुत गीत है!

श्रीमद्भगवद्गीता को पाँच हज़ार वर्ष बीत गए हैं और हमारे जीवन का स्तर बदल गया है। मनुष्य की भौगोलिक स्थिति बदल गई है। विज्ञान ने बहुत उन्नति की है जिससे हमारा जीवन सुखमय हो गया है। हमारे पास इन्टरनेट है, मोबाइल है, अनेकों उपकरण हैं, अनेकानेक संसाधन हैं, गाड़ियाँ हैं। अनेक प्रकार के संशोधन भी हो रहे हैं परन्तु मनुष्य की मन:स्थिति विकारग्रस्त है, क्यों वह निराश है, विषादग्रस्त है? क्यों अवसादग्रस्तता है? क्यों काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह जैसे विकार बढ़ रहे हैं और मन में एक अशान्ति है और यह अशान्ति किस प्रकार से दूर हो? इसके लिये जो पाथेय श्रीभगवान ने अर्जुन को दिया है- श्रीमद्भगवद्गीता, उसका अध्ययन हम कर रहे हैं, चिन्तन कर रहे हैं जिससे हम अर्जुन की पङ्क्ति में जाकर बैठ पाएँ। अर्जुन के लिए जो गङ्गा श्रीभगवान अपने मुखारविन्द से ब्रह्मविद्या प्रवाहित कर रहे है, उसकी कुछ बूँदें हमें भी प्राप्त हों जिससे कि हमारा जीवन भी अमृतमय हो जाए।

ॐ असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मामृतं गमय।।

अर्थात : हे ईश्वर, (हमको) असत्य से सत्य की ओर ले चलो। अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो। मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो।

असत्य से सत्य की ओर या निचले स्तर के असत्य से ऊपर के स्तर के सत्य की ओर, मृत्यु को प्राप्त होने से अमृतत्व को प्राप्त करने की ओर, अज्ञान रूपी तमस(अन्धकार) के आवरण को हटाकर ज्ञान की ज्योति प्राप्त करना, ऐसे ज्ञानमय् जीवन को प्राप्त

करना मनुष्य जीवन का लक्ष्य होना चाहिए क्योंकि मनुष्य ही एकमात्र ऐसा प्राणी है, एक ऐसी योनि है जिसे बुद्धि की प्राप्ति है।

"**बुद्धियुक्तो जहातीह, उभे सुकृतदुष्कृते।**
तस्माद्योगाय युज्यस्व, योगः(ख्) कर्मसु कौशलम्॥२.५०॥"

अर्थात, श्रीभगवान बुद्धि को अत्यन्त महत्त्व देते हैं और तर्क से वहाँ पर पहुँचना और भक्तिमय आचरण से परमात्मा की ओर पहुँचना। यह पुरुषोत्तम योग किस प्रकार से हमारे जीवन में अवतरित हो इसके लिए प्रयासरत् रहना चाहिए। इसके लिए कुछ गुण हमें अपने अन्दर लाने चाहिए जिसे श्रीभगवान ने दैवीय सम्पत्ति कहा है।

जो भी महान व्यक्ति इस विश्व में हुए हैं वह सब अपने अन्दर कुछ सद्गुणों का वरण करते हैं। वह सद्गुणों को अपने जीवन में धारण करने के लिए अपनी एक सूची तैयार करते हैं और उसको आत्मसात करने के लिए दिनचर्या का विश्लेषण करते हैं और तर्क से उसे आत्मसात करते हैं।

उदाहरण के लिए अमेरिका के पूर्व प्रधानमन्त्री रूज़वेल्ट भी अपनी एक सूची बनाते थे, जिस पर उन्होंने किस गुण का पालन करना है और कैसे उसको आज आत्मसात् करना है, इसका वह सुबह प्रण लेते थे और रात को उसे कितने प्रतिशत् धारण किया, उसका विवरण लिखते थे।

इस प्रकार से सद्गुणों का आधान करना और सद्गुणों से मण्डित अपने जीवन की दिनचर्या का पालन करना, विश्लेषण करना समस्त सृष्टि के लिए कल्याणकारी होता है। उस प्रकार के जीवन को अङ्गीकार करना या स्वयं को उसमें ढालना समाज के लिए कल्याणकारी होता है।

समर्थ गुरु रामदास जी कहते हैं कि श्रीरघुनाथ अर्थात भगवान श्रीराम जी समस्त गुणों की ख़ान हैं। भगवान श्रीराम का जीवन गुणों से मण्डित है। श्रीराम जी का पूजन हम इसलिए करते हैं कि उनके कुछ गुण हममें भी सङ्क्रमित हों और हमने देखा कि मनुष्य जिसका चिन्तन करता है वहीं से गुण अथवा अवगुण का आदान-प्रदान होता है इसलिए चिन्तन को अधिक महत्त्व दिया है।

श्रीभगवान ने एक-एक करके छब्बीस सद्गुणों का बखान किया है परन्तु अब किन गुणों का परित्याग करना है, उसके विषय में बतलाया है।
श्रीभगवान ने बहुत ही महत्त्वपूर्ण ढङ्ग से पूर्वार्ध में सद्गुणी मनुष्य को भगवान की ही पूजा के विषय में बतलाया था, परन्तु अब आसुरी प्रवृत्ति वाले मनुष्य का विवरण दिया है। आसुरी प्रवृत्ति का वर्णन श्रीभगवान ने पूजा करने वाले या न करने वाले के आधार पर नहीं, वस्त्र या वेषभूषा के आधार पर भी नहीं, अपितु आन्तरिक गुणों के आधार पर किया है।

मनुष्य अन्दर से कैसा है, उसकी प्रवृत्ति कैसी है, इस आधार पर विश्लेषण किया है। क्या त्यागना है और क्या नहीं इसका विवरण दिया है। कुछ मनुष्यों ने आसुरी वृत्ति का वरण किया है और उसी सिद्धान्त पर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। दैवीसम्पत्ति और आसुरीसम्पत्ति दोनों से हम युक्त हैं लेकिन ध्यान देने की बात है कि कौरव सौ हैं और पाण्डव केवल पाँच इसलिए हमें देखना होगा कि किस गुण का हमें परित्याग करना है जिससे हमारे जीवन का उन्नयन हो।

आसुरी प्रवृत्ति के लोग सृष्टि का अमङ्गल कैसे हो, इसका ही चिन्तन करते हैं। वह यही भ्रम फैला रहे हैं कि सृष्टि का निर्माण केवल स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों तक ही सीमित है। कोई नियामक नहीं है और न ही कोई भगवान हैं परन्तु सृष्टि के निर्माण में नियामक अर्थात ईश्वर के द्वारा ही एकमात्र निर्माण हुआ है परन्तु आसुरी प्रवृत्ति के लोग इस आधार को नहीं मानते। श्रीभगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! तुम्हारे सामने जो ग्यारह अक्षौहिणी सेना खड़ी है, वह आसुरी प्रवृत्ति के निमित्त दुराचारी दुर्योधन के पीछे खड़ी है और अट्ठारह अक्षौहिणी में से सात अक्षौहिणी सेना जो पाण्डवों के साथ है, यद्यपि कौरवों से चार अक्षौहिणी ही कम है परन्तु दैवीयसम्पत्ति युक्त है। इस प्रकार सृष्टि में अच्छे और बुरे लोगों का आँकलन किया जा सकता है। जो गलत धारणा लेकर चलते हैं उनके विषय में श्रीभगवान् नवम् श्लोक में कहते हैं:-

16.9

एतां(न्) दृष्टिमवष्टभ्य, नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः, क्षयाय जगतोऽहिताः।।16.9।।

इस (पूर्वोक्त) (नास्तिक) दृष्टि का आश्रय लेने वाले जो मनुष्य अपने नित्य स्वरूप को नहीं मानते, जिनकी बुद्धि तुच्छ है, जो उग्र कर्म करने वाले (और) संसार के शत्रु हैं, उन मनुष्यों की सामर्थ्य का उपयोग जगत का नाश करने के लिये ही होता है।

विवेचन: श्रीभगवान कहते हैं कि जो लोग गलत सिद्धान्तों को अपनाते हैं और फिर गलत धारणाओं को फैलाते हैं, जिससे कुछ लोगों को लगता है कि यही सही है और वह इसे ही जीवन का आधार मान लेते हैं। इस प्रकार से मिथ्या धारणा का आवरण ओढ़े हुए हैं और मन में गलत धारणा को ही जिन्होंने सच मान लिया है, ऐसे मानवों को श्रीभगवान ने अल्पबुद्धि या मन्दबुद्धि की परिभाषा दी है। ऐसे लोग सृष्टि का अहित ही करते हैं अर्थात सृष्टि के लिए अमङ्गलकारी सिद्ध होते हैं। ऐसे क्रूर लोग जगत के लिए अमङ्गलकारी सिद्ध होते हैं। सिर्फ अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए दूसरों का नाश करते हैं।

अपने देश की सीमाओं का विस्तार करने के लिए निरपराध लोगों को भी समाप्त करते हैं। अतिरेकी लोग जगत के नाश को ही अपना धर्म मानते हैं। वह दूसरों को कष्ट देने में सिद्ध हो जाते हैं। इनका एक ही कर्म है-खाना-पीना और मौज करना। वह छः प्रकार के विष का उपयोग करके दूसरों की ज़मीन हड़पना, कष्ट देना, दूसरे की पत्नी को भगा लेना या अपहरण करना, सम्पत्ति हड़पना, संहार करना आदि इसको ही अपना धर्म मानते हैं। ऐसे लोगों का वर्णन शास्त्रों में भी है।

16.10

काममाश्रित्य दुष्पूरं(न्), दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्, प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः।।16.10।।

कभी पूरी न होने वाली कामनाओं का आश्रय लेकर दम्भ, अभिमान और मद में चूर रहने वाले (तथा) अपवित्र व्रत धारण करने वाले मनुष्य मोह के कारण दुराग्रहों को धारण करके (संसार में) विचरते रहते हैं।

विवेचन: श्रीभगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! जो मनुष्य कभी न पूर्ण होने वाली कामनाओं के वशीभूत होकर कार्य करते हैं उन्हें आसुरी प्रवृत्ति वाला ही समझना चाहिए।

गुलज़ार जी ने कामनाओं पर बहुत ही अच्छी बात कही है:

कामनाएँ बेवफा होती हैं, पूरी होते ही बदल जाती हैं ।

अर्थात ऐसे मनुष्य एक कामना को पूर्ण करने हेतु प्रयास करते रहते हैं, परन्तु जैसे यही एक कामना पूर्ण होती है तो कुछ क्षण बाद दूसरी कामना जागृत हो जाती है। कामना और ध्येय दोनों अलग-अलग बातें हैं।कामनाएँ सिर्फ अपनी अनावश्यक इच्छाओं की पूर्ति हेतु जागृत होती हैं परन्तु ध्येय लक्ष्य पर निर्भर करता है। जैसे एक वैज्ञानिक का अपने विज्ञान में नए संशोधन करने का ध्येय है, एक खिलाड़ी का अपने खेल को आत्मसात करने का ध्येय है और सङ्गीतकार के लिए सङ्गीत सीखना उसका ध्येय है। इसके विपरीत कुछ लोगों के लिए कामना अथवा उपभोग करना, केवल भोग ही प्राप्त करना उनका काम होता है। युवाओं को विशेष ध्यान देना होगा कि वह कामनाओं और ध्येय को अलग ही समझें और इसी क्रम में श्रीभगवान सात वेब अध्याय में कहते हैं कि

"बलं(म्) बलवतां(ञ्) चाहं(ङ्), कामरागविवर्जितम्।
धर्माविरुद्धो भूतेषु, कामोऽस्मि भरतर्षभ॥७.११॥"

अर्थात श्रीभगवान कहते हैं कि जो धर्म से सम्मत कार्य है, वह मेरा स्वरूप है। जीवन का ध्येय लोगों के लिए अच्छा करना, लोगों

को अच्छाई बाँटना है। ऐसे अच्छे सिद्धान्त जिनके मन में हैं, वह ब्रह्मस्वरूप है। उसके विपरीत अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए दूसरों की सम्पत्ति को हड़पना और सञ्चय में उसका जीवन समाप्त हो रहा है, इसका उसको ज्ञान ही नहीं होता। कामनाओं के मोह में आश्रित हुआ वह अज्ञानता की ओर बढ़ रहा है।

अज्ञान भी दो प्रकार का है- आवरण और विक्षेप। आवरण अर्थात ज्ञान के प्रकाश को ढ़क देना और विक्षेप अर्थात गलत सिद्धान्तों को आचरण में लाते हुए भ्रष्टाचार को बढ़ावा देना और उसी भ्रष्टाचार को शिष्टाचार मान लेना और दूसरों को भी यही बताना कि यही शिष्टाचार है। एक दुराचारी ही ऐसा कर सकता है। माल और मद का सङ्ग्रह करते हुए यह लोग अन्दर से खोखले होते हैं। सञ्चय इतना होना चाहिए कि जिससे हमारा ध्येय पूरा हो।

हमारे देश के पूर्व राष्ट्रपति श्री ए पी जे अब्दुल कलाम जी जब राष्ट्रपति भवन से गए तो वह कुछ भी नहीं ले कर गए, उनका अपना घर भी नहीं था और बैंक में भी जमा राशि बहुत कम थी। ऐसे ही पूर्व प्रधानमन्त्री श्री लाल बहादुर शास्त्री जी का भी अपना घर नहीं था और उनके बैंक खाते में भी केवल सत्तर हज़ार रुपये ही थे। उन्होंने देश के लिए ही सब कुछ न्यौछावर कर दिया। ऐसे सिद्धान्त वाले लोग भगवद्प्राप्ति करते हैं। परन्तु इसके विपरीत केवल भोग के लिए सञ्चय करने वाले मनुष्य को जो मिलता है वह अधिक देर तक टिकता नहीं।

एक बार एक व्यक्ति भगवान से वर प्राप्ति के लिए उनकी पूजा करता है। भगवान वर देने आ भी जाते हैं। वह बोलता है कि भगवान जो भी मेरी कामनाएँ हैं उन्हें पूर्ण कीजिए तो भगवान कहते है कि मैं तुम्हें तीन वर देता हूँ परन्तु जो तुम प्राप्त करोगे उससे दुगुणा तुम्हारे पड़ोसी को मिलेगा। इस बात पर वह बहुत छटपटाया। अब उसकी आसुरी प्रवृत्ति उसको कचोटने लगी कि क्या फायदा जब दुगना उसके पड़ोसी को मिलेगा। तो उसने भगवान से अपनी एक आँख फोड़ने को बोला जिस कारण उसके पड़ोसी की दोनों आँखें फूट जाएँ तो इस तरह की भावनाओं से ग्रसित लोगों को आप आसुरी प्रवृत्ति वाला ही जानें।

16.11

चिन्तामपरिमेयां(ञ्) च, प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा, एतावदिति निश्चिताः।।16.11।।

(वे) मृत्यु पर्यन्त रहने वाली अपार चिन्ताओं का आश्रय लेने वाले, पदार्थों का संग्रह और उनका भोग करने में ही लगे रहने वाले और 'जो कुछ है, वह इतना ही है' - ऐसा निश्चय करने वाले होते हैं।

विवेचन: श्रीभगवान कहते हैँ कि ऐसे आसुरी प्रवृत्ति के लोगों को अपने मोह प्राप्ति के लिए अत्यधिक चिन्ता रहती है और विषय-भोग और वस्तु प्राप्त करने के मोह में चिन्तित रहते हैं। चौराहे पर बैठकर व्यर्थ की चिन्ताओं का गान करते रहते हैं। देश की बुराई करते हैं कि देश का क्या होगा और कोई हल न मिलने पर मित्रों के साथ भोगों में व्यस्त हो जाते हैं। वह कहते हैं कि खाते-पीते, मौज करते हैं क्योंकि देश का भाग्य कभी बदलने वाला नहीं। ऐसे सिद्धान्त वाले लोग कभी किसी का भला नहीं कर सकते।

पहले विदेशी लोग इस बात पर टिप्पणी करते थे कि भारत के लोग अपने ही देश की बुराई क्यों करते हैं, परन्तु अब समय बदल गया है और अन्य देश भी भारत की तरफ आशावादी राय रखते हैं। अब लोगों का स्वाभिमान जागृत हुआ है। अब बदलाव दिखता है। लोग अपनी संस्कृति की ओर जागरूक हुए हैं और अपने धर्मग्रन्थों को पढ़ने के लिए आगे आ रहे हैं। विदेशी भी भारतीय ग्रन्थों में रूचि ले रहे हैं परन्तु जो आसुरी प्रवृत्ति के लोग हैं, उनको तो कोई बदलाव नहीं दिखता है और वे सदैव आलोचना ही करते रहते हैं।

16.12

आशापाशशतैर्बद्धाः(ख्), कामक्रोधपरायणाः।

ईहन्ते कामभोगार्थम्, अन्यायेनार्थसञ्चयान्।।16.12।।

(वे) आशा की सैकड़ों फाँसियों से बँधे हुए मनुष्य काम-क्रोध के परायण होकर पदार्थों का भोग करने के लिये अन्याय पूर्वक धन-संचय करने की चेष्टा करते रहते हैं।

विवेचन: श्रीभगवान ने आसुरी प्रवृत्ति के लोगों का विस्तार से वर्णन किया है और इसलिए भगवान हमें अपने अन्दर भी झाँकने को बाध्य करते हैं। श्रीभगवान कहते हैं कि ऐसे लोग काम-क्रोध परायण हैं और वह अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए अर्थ सञ्चय में लगे रहते हैं और बहुत सी आशाओं में बध्य रहते हैं।

हमारे धर्म के अनुसार सोलह खम्भों पर हमारी संस्कृति ठहरी है। जिसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष- यह चार पुरुषार्थ कहे गए है। चार वर्ण हैं, चार आश्रम और चार साधन कहे गए हैं परन्तु धर्म और अर्थ पर सृष्टि का विकास निर्भर है। कामनाओं की पूर्ति के लिए अर्थ की आवश्यकता होती है और अर्थ की प्राप्ति धर्म अनुसार होनी चाहिए परन्तु उल्टे-सीधे रास्ते से अर्थ अर्जन करना फिर उसका प्रदर्शन करना जिससे कि अन्य लोग भी इससे प्रभावित होकर वैसे ही करने को बाध्य हो जाएँ। ऐसी मनोवृत्ति वाले लोग, यदि उनके इस कार्य में कोई बाधा उत्पन्न करता है तो वह अपनी कामनाओं की पूर्ति हेतु दूसरों का नाश करने में भी नहीं हिचकिचाते हैं।

16.13

इदमद्य मया लब्धम्, इमं(म्) प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे, भविष्यति पुनर्धनम्।।16.13।।

वे इस प्रकार के मनोरथ किया करते हैं कि - इतनी वस्तुएँ तो हमने आज प्राप्त कर लीं (और अब) इस मनोरथ को प्राप्त (पूरा) कर लेंगे। इतना धन तो हमारे पास है ही, इतना (धन) फिर भी हो जायगा।

विवेचन: श्रीभगवान कहते हैँ कि ऐसे लोग सदा अपनी सञ्चित की हुई वस्तुओं की ही चिन्ता करते रहते है। उन्हें, अधिक-से-अधिक कैसे सञ्चय करें बस यही चिन्ता रहती है। अर्थ प्राप्त करना आवश्यक है परन्तु आवश्यकता से अधिक की अभिलाषा ही आसुरी प्रवृत्ति को जागृत करती है। मनुष्य की, आज जो प्राप्त किया है अब उससे कई गुना अधिक प्राप्त करने की लालसा बढ़ती रहती है।

सन्त ज्ञानेश्वर महाराज जी की बहुत सुन्दर ओवी है :-

विश्वाचे सारे धन, त्याचा मीच स्वामी होइन"।

आसुरी प्रवृत्ति के लोग दूसरों का धन भी सञ्चय करना चाहते हैं और उनकी सम्पत्ति हड़पना और भूमि अधिगग्रहण करना चाहते हैं हिट्लर की भाँति दूसरों का नाश करते हैं तो,

ज्ञानेश्वर जी महाराज कहते हैं कि:

वक्रदृष्टि ज्यावर टाकीन नाश त्याचा होईल"।

उनका मैं नाश कर देता हूँ। यह सृष्टि विकारों से निर्मित है और यदि कोई अपनी कामनाओं हेतु किसी पर तलवार की नोक पर अपने धर्म का प्रसार करेंगे, उनका पतन निश्चित है क्योंकि ऐसे मनुष्य की कामनाएँ सिर्फ अपने स्वार्थ पर ही टिकी होती हैं।

16.14

असौ मया हतः(श्) शत्रुः(र्), हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं(म्) भोगी, सिद्धोऽहं(म्) बलवान्सुखी।।16.14।।

वह शत्रु तो हमारे द्वारा मारा गया और (उन) दूसरे शत्रुओं को भी (हम) मार डालेंगे। हम ईश्वर (सर्व समर्थ) हैं। हम भोग भोगने वाले हैं।हम सिद्ध हैं, (हम) बड़े बलवान (और) सुखी हैं।

विवेचनः-आसुरी प्रवृत्ति के लोग यह सोचते हैं कि आज उनके मार्ग में जो आया उसे वे समाप्त कर चुके हैं। वह अपने रास्ते में आने वाले हर शत्रु का नाश करते हैं और स्वंय को ईश्वर, नियामक समझने लगते हैं परन्तु ऐसे इतिहास में बहुत उदाहरण हैं जैसे कि हिट्लर, सद्दाम हुसैन इत्यादि। उन्होंने भी अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए निरपराध लोगों का नाश किया था परन्तु उनका स्वयं का भी नाश हो गया।

आज भी ऐसी प्रवृत्ति के लोग हैं जो चार प्रकार के(एम)M-

Money मनी (पैसा),
Men मेन (व्यक्ति),
Muscle मसल (ताकत) और
Media मीडिया पर अपना प्रभाव बनाए रखना चाहते है। ऐसे संसाधनों की प्राप्ति के लिए वह अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

"थोड़े वैरी मारले आजवरी आणिकही मारीन यावरी। मग एकटाच मी या भूवरी गौरवाने नांदेन। जेवढे राहतील माझ्या सेवेत त्याहून निचरा करेन समाप्त। या चराचर विश्वात मीच एक इश्वर ।।

अर्थात - कुछ शत्रु मैंने मार दिए हैं, आगे और भी समाप्त करूँगा और इस धरती पर राज करूँगा, सारे लोग मेरे आधीन होंगे, जो मेरी सेवा में होंगे इनको छोड़ बाकी सबको समाप्त करूँगा और मैं ही ईश्वर बनूँगा।
अर्थात् मेरे रास्ते में जो आया मैं उसको मार दूँगा, ऐसी सोच वाला मनुष्य सिर्फ अपनी स्तुति करने वालों को छोड़ अन्य सभी को अपना शत्रु मानता है और फिर सभी को खत्म करने का खेल रचता है। स्वयं को ही ईश्वर, नियामक समझने लगता है।

16.15, 16.16

आढ्योऽभिजनवानस्मि, कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य, इत्यज्ञानविमोहिताः।।16.15।।
अनेकचित्तविभ्रान्ता, मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः(ख्) कामभोगेषु, पतन्ति नरकेऽशुचौ।।16.16।।

हम धनवान हैं, बहुत से मनुष्य हमारे पास हैं, हमारे समान दूसरा कौन है? (हम) खूब यज्ञ करेंगे, दान देंगे (और) मौज करेंगे - इस तरह (वे) अज्ञान से मोहित रहते हैं।
(कामनाओं के कारण) तरह-तरह से भ्रमित चित्त वाले, मोह-जाल में अच्छी तरह से फँसे हुए (तथा) पदार्थों और भोगों में अत्यन्त आसक्त रहने वाले मनुष्य भयंकर नरकों में गिरते हैं।

विवेचन: अहङ्कार युक्त यह भोगी अब अपनी कामनाओं की पूर्ति हेतु यज्ञ करने को आतुर हो जाता है कि जिससे पूरे विश्व में उसी की ही चर्चा हो। अपनी वाहवाही के लिए वह बड़े-बड़े काम करने की लालसा रखता है और उसके लिए दान भी देता है। ऐसी मनोवृत्ति वाले लोग मोहजाल के पाश में और अधिक फँसते जाते हैं। वे अज्ञानता के इस अन्धकार में गिरते चले जाते हैं और काम-क्रोध की पूर्ति के लिए कामवासना से ग्रस्त रहते हैं। ऐसा विषय-भोगी व्यक्ति अन्त के पश्चात् भयङ्कर नर्कों में गिरता है।

स्वर्ग-नर्क क्या है?

इसका उत्तर ज्ञानेश्वर जी महाराज देते हैं कि सात्त्विक भावनाओं का उन्मोदन होना ही स्वर्ग है और भोगों के जितने भी साधन प्राप्त हो जाएँ परन्तु उतनी ही अशान्ति का अनुभव होता है। दूसरों की ओर देखकर और पाने की लालसा बढ़ती है क्योंकि उसको दूसरों से अपनी प्राप्ति तुच्छ ही दिखती है। मन में और बटोरने की लालसा बढ़ती है। यही अज्ञानता नर्क का द्वार खोलती है।

सन्त श्री ज्ञानेश्वर जी कहते हैं कि बड़े बनना गलत नहीं है परन्तु बड़प्पन प्राप्त करना अनिवार्य है। गुरुजी कहते हैं कि बड़प्पन प्राप्त करने के लिए दूसरों को नीचा दिखाना या किसी का नाश करना गलत है।

इस पर ज्ञानेश्वर महाराज की बहुत सुन्दर ओवी है:

"**व्युत्पत्ति अवघी विसरिजे, थोर पण पर्हा सांडीजे | जे जगा धाकुटे होई जे तै जवळिक माझे ||**

" जो भी हमने प्राप्त किया उसे प्राप्त नहीं करना ऐसा नहीं है, अपितु प्राप्त करके उसे भूल जाना चाहिए। परमात्मा तब प्राप्त होते हैं जब हमाारी प्राप्ति का आवरण छूट जाता है। जब हम हमारी उपलब्धि का आवरण छोड़ कर सूक्ष्मता प्राप्त करते हैं तब हम भगवान के करीब होते हैं।

इस बात को समझाते हुए सन्त श्री ज्ञानेश्वर जी कहते हैं कि बड़ा बनना गलत नहीं परन्तु अपना बड़प्पन जो भगवान के चरणों में समर्पित करता है, वही भगवान के समीप जा सकता है और उसे समस्त लोकों का सुख प्राप्त होता है। विद्या अच्छी है परन्तु उसका अभिमान गलत है और बड़प्पन अच्छा है परन्तु उसके साथ चञ्चलता गलत है। क्या हम अपना बड़प्पन भूल सकते हैं?

एक प्रसङ्ग में श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जी की कथा है कि वह एक दिन रेलवे स्टेशन के पास टहल रहे थे कि स्टेशन पर एक आसामी दम्पति उतरे और उन्होंने ईश्वरचन्द्र जी को कुली समझकर् सामान पहुँचाने की बात कही और वह उनका सामान लेकर छोड़ आए। वह बहुत बड़े ज्ञानी थे परन्तु वह बिना कुछ कहे उनका सामान रखकर चले गए। जो यजमान थे, जब उन्होंने ईश्वरचन्द्र जी को जाते हुए देखा तो उन्होंने पूछा कि वह क्या करने आए थे तो उन्होंने बताया कि वह तो कुली समझकर उनको सामान पहुँचाने का बोलकर लाए थे। तो यजमान ने बोला कि वे कलकत्ता के बहुत बड़े विद्वान् हैं। बड़े लोग अपने बड़प्पन का प्रचार भूल सकते हैं परन्तु एक सामान्य व्यक्ति नहीं भूल सकता और आसुरी प्रवृत्ति की ओर अग्रसर हो जाता है।

16.17

आत्मसम्भाविताः(स्) स्तब्धा, धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते, दम्भेनाविधिपूर्वकम्।।16.17।।

अपने को सबसे अधिक पूज्य मानने वाले, अकड़ रखने वाले (तथा) धन और मान के मद में चूर रहने वाले वे मनुष्य दम्भ से अविधिपूर्वक नाममात्र के यज्ञों से यजन करते हैं।

विवेचन: स्वयं की स्तुति करने वाले अपने धन के मद में चूर, क्या गलत है? यह नहीं देखते। अपनी धन-सम्पदा, पदवी और यश के मद में ऐसे खो जाते हैं कि अपनी प्रशंसा के लिए बड़े-बड़े कार्य करते रहते हैं। वह अपनी प्रशंसा के लिए भूमि-पूजन करते हैं परन्तु यह नहीं देखते कि जो कार्य हो रहा है, वह शास्त्रविधि से हो रहा है कि नहीं ं और अपनी ही स्तुति में मग्न रहते हैं।

एक बार की बात है, जब राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद जी ने गीताप्रेस के संस्थापक हनुमान प्रसाद जी पोद्दार को भारतरत्न देने के लिए कहा तो वे गिड़गिड़ाने लगे कि उन्हें इस सब में न फँसाओ, उनका मन इस उपाधि से अशान्त हो जाएगा। लोगों की प्रतिक्रियाओं से मन अशान्त हो जाएगा और उन्होंने उपाधि नहीं ली। आजकल लोग सिर्फ नाम के लिए ही पूजा-पाठ भी करते हैं। कुछ लोग पहले से साथ रहते हैं पर सिर्फ मीडिया में प्रसिद्धि के लिए विवाह का प्रपञ्च रचते हैं। शास्त्रपद्धति से विवाह कार्य हो रहा कि नहीं इसकी भी चिन्ता नहीं करते हैं। इसी प्रकार से जब गणपति जी की भी स्थापना करते हैं तब भी आसुरी प्रवृत्ति के निमित्त भगवान की पूजा में मन नहीं लगता और सभी विधियों को भुलाकर सिर्फ मीडिया में अपनी वाहवाही और फोटो की

चिन्ता रहती है और पाखण्ड रह जाता है।

महाभारत का एक प्रसङ्ग है- अर्जुन के कुछ सङ्कल्प थे। उनमें प्रमुख सङ्कल्प था कि जो उनके गाण्डीव का धिक्कार करेगा, वे या तो उसका वध करेंगे या स्वयं को ही समाप्त कर देंगें।

एक दिन अर्जुन कहीं और युद्ध में गए हुए थे और कर्ण ने सभी चारों पाण्डवों को हरा दिया। धर्मराज युधिष्ठर परास्त होने से खिन्न होकर अर्जुन के गाण्डीव को धिक्कारने लगे कि धिक्कार है तुम्हारे ऐसे गाण्डीव पर जो तुम कर्ण का वध नहीं कर सके। अब यह सुनकर अर्जुन भी तिलमिला गए कि अब वह क्या करें कि एक तरफ उनका प्रण है और दूसरी ओर उनके बड़े भाई। तब श्रीकृष्ण जी ने उनसे कारण पूछा तो वे बोले कि उन्होंने प्रण लिया है कि गाण्डीव का धिक्कार जो करेगा वे या तो उसका वध करेंगे या स्वयं का वध करेंगे। अब श्रीकृष्ण अर्जुन को डाँटने लगे कि तुम ऐसे प्रण लेते हो कि मुझे तुम्हें सम्भालना पड़ता है। फिर श्रीभगवान अर्जुन को रास्ता दिखाते हैं कि तुम स्वयं की स्तुति करो और इतनी स्तुति करो कि आत्मबलिदान के समान लगे। श्रीकृष्ण और अर्जुन के इस प्रसङ्ग में आत्मस्तुति की तुलना मृत्यु से की गई है।

16.18

अहङ्कारं(म्) बलं(न्) दर्पं(ङ्), कामं(ङ्) क्रोधं(ञ्) च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु, प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः।।16.18।।

(वे) अहंकार, हठ, घमण्ड, कामना और क्रोध का आश्रय लेने वाले मनुष्य अपने और दूसरों के शरीर में (रहने वाले) मुझ अन्तर्यामी के साथ द्वेष करते हैं (तथा) (मेरे और दूसरों के गुणों में) दोष दृष्टि रखते हैं।

विवेचन: ("**मैं**,) एक शुद्ध मैं है जो सन्तों, महापुरुषों द्वारा भी उपयोग में लाया जाता है परन्तु दूसरा **मैं** अशुद्घ प्रकार से अहङ्कार की परिभाषा है। मैं, मेरा ही सबकुछ है ऐसा अहङ्कार गलत है। अपने ही कुल की और अपनी स्तुति करने वालों को अभिमान हो जाता है। अपनी कामनाओं की पूर्ति होती है तो अहङ्कार उत्पन्न होता है और यदि अपूर्ण रहती है तो काम-क्रोध बढ़ता है जो आसुरी प्रवृत्ति को जन्म देता है। वे दूसरों की निन्दा करते हैं और अपने अन्दर के भगवान तथा दूसरे के अन्दर के भगवान की भी निन्दा करते हैं। जैसे मैं कहूँ वैसा ही होना चाहिए, ऐसा आग्रही इनका स्वभाव होता है।

हम दो बार राम-राम बोलते है जिसका अभिप्राय है कि मेरे अन्दर के राम और आपके अन्दर के राम को नमस्कार है क्योंकि आपके अन्दर भी आत्माराम हैं और मेरे अन्दर भी आत्माराम हैं। यदि कोई किसी का तिरस्कार करता है तो वह अपने अन्दर बैठे राम का भी तिरस्कार करता है। काम-क्रोध का उद्भव कामना के पूर्ण नहीं होने से होता है।

श्रीमद्भगवद्गीता के तीसरे अध्याय में श्रीभगवान कहते हैं कि:

काम एष क्रोध एष, रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा, विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥३.३७॥"

अर्थात काम और क्रोध की उत्पत्ति रजोगुण से उत्पन्न होती है। ऐसे वो दूसरों की निन्दा करते हुए मुझसे द्वेष करते हैं। भगवान अपना परिचय दे रहे हैं कि वे हर किसी के अन्दर हैं।

पन्द्रहवें अध्याय के श्लोक में:

"**ममैवांशो जीवलोके, जीवभूतः(स्) सनातनः।**
मनः(ष्) षष्ठानीन्द्रियाणि, प्रकृतिस्थानि कर्षति॥१५.७॥"

अर्थात् हर जीव में मेरा ही अंश है। वे किसी जाति के अनुसार, वर्ग के अनुसार, राष्ट्र के अनुसार कोई सीमाओं का वर्णन नहीं

करते। सीमाएँ तो मनुष्य के द्वारा खींची गई हैं परन्तु भगवान के दर पर सब एक ही हैं और कोई सीमाएँ नहीं हैं।

दसवें अध्याय में श्रीभगवान कहते हैं कि:

"अहमात्मा गुडाकेश, सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं(ञ्) च, भूतानामन्त एव च॥१०.२०॥"

अर्थात सब जीवों में, मैं आत्माराम के रूप में विद्यमान हूँ परन्तु मुझसे द्वेष करने वालों को इस बात का कोई प्रभाव नहीं।

16.19

तानहं(न्) द्विषतः(ख्) क्रूरान् , संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभान्, आसुरीष्वेव योनिषु।।16.19।।

उन द्वेष करने वाले, क्रूर स्वभाव वाले (और) संसार में महानीच, अपवित्र मनुष्यों को मैं बार-बार आसुरी योनियों में ही गिराता ही रहता हूँ।

विवेचन: अत्यधिक कठोर शब्दों का प्रयोग श्रीभगवान ने यहाँ पर किया है। वह कहते हैं कि सभी की निन्दा करने वाले अशुभ, कामी, क्रूर, नराधम और अतिरेकी लोगों को मैं बार-बार असुर योनि में डालता हूँ। गुरुजी महाराज कहते हैं कि यहाँ "**मैं** उपलक्षण" है।

हमने जो कुछ भी बोया है, वही हमें वापिस मिलेगा। हम जैसा बीज बोते हैं हमें फल भी उसी अनुसार ही मिलेगा। यही सिद्धान्त है, जैसे- यदि हम भाँग बोते हैं तो भाँग मिलेगी, यदि गेहूँ बोते हैं तो अनाज मिलेगा, यदि हम चना बोते हैं तो चना मिलेगा। सृष्टि का नियम ही यही है और यही कर्मों का भी सिद्धान्त है। यहाँ पर मैं का अभिप्राय औपचारिकता है और भगवान का अभिप्राय ईश्वरत्त्व को माना गया है। वास्तविक परिचय नियामक है।

हमारे शास्त्रों में ईश्वर का वर्णन इस तरह से किया गया है कि ईश्वर को बारिश के समान देखना चाहिए। जो भी बीज बोया गया है, उसपर बारिश पड़ने से फल उसी के अनुसार ही मिलता है। इसे समझना चाहिए कि जो भी फसल आती है, वह कर्मों के अनुसार ही आती है। यदि कोई व्यक्ति किसी का वध करता है तो न्यायाधीश उसको मृत्यु की सज़ा सुनाता है, जल्लाद उसको फाँसी देता है। अब यह सोचने का विषय है कि सज़ा पाने वाले व्यक्ति का वध किसने किया?

क्या सज़ा सुनाने वाले जज ने मारा या जल्लाद ने? नहीं, उसको उसके कर्मों के अनुसार ही दण्ड मिला। इसे समझना चाहिए कि प्रकृति के संविधान के अनुसार उसको फल मिला। हमें वही मिलता है जो हमने कर्म किये हैं। प्रकृति का भी अलग संविधान है। यदि कोई संस्था बनती तो उसकी एक नियमावली होती है। वह उसी के अनुसार कार्य करती है। विश्वविद्यालय का भी अपना संविधान है उसी प्रकार प्रकृति का भी अपना संविधान है। प्रकृति नियामकता के आधार पर चलती है। सृष्टि का संविधान वेद हैं और श्रीभगवान कहते हैं कि आसुरी प्रवृत्ति के लोगों को मैं बार-बार असुर योनि में डालता हूँ। वे वैसे ही परिवार में जन्म लेते हैं और बचपन से ही वैसे वातावरण में रहते हैं। कोई ही प्रह्लाद जैसा विरला होता है जो आसुरी योनि का उद्धार करता है।

16.20

आसुरीं(यँ) योनिमापन्ना, मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय, ततो यान्त्यधमां(ङ्) गतिम्।।16.20।।

हे कुन्तीनन्दन ! (वे) मूढ मनुष्य मुझे प्राप्त न करके ही जन्म-जन्मान्तर में आसुरी योनि को प्राप्त होते हैं, (फिर) उससे भी अधिक अधम गति में अर्थात् भयंकर नरकों में चले जाते हैं।

विवेचन: श्रीभगवान कहते हैं कि हे कौन्तेय! परमात्मा की प्राप्ति नहीं होने के कारण ऐसे अज्ञानी, नराधम, क्रूर और अतिरेकी लोगों को बार-बार असुर योनि में डालता हूँ। वे बार-बार इस योनि में जन्म लेते हैं। फिर श्रीभगवान ही आकर इस सृष्टि को इन लोगों से मुक्त करते हैं। आज के परिपेक्ष्य में सज्जनों की एकत्र शक्ति को ही भगवान का स्वरूप माना गया है।

आज के परिवेश में सज्जनों की सङ्घ शक्ति को ही परमात्मा का स्वरुप माना गया है। यही परमात्मा है और यही सज्जन शक्ति दुर्जन शक्ति से सृष्टि को मुक्त कर सकती है। दैवी शक्ति और आसुरी शक्ति को पहचानने के लिए परमात्मा ने तीन बातें बताई है कि एक तो हमें अपने अन्दर भी झाँकना चाहिए। अपने आस-पास के लोगों को पहचानना चाहिए। किसके सान्निध्य में हम रह रहे हैं? बच्चों के मित्र कैसे हैं? इत्यादि। मनुष्य की वैज्ञानिक पद्धति सूक्ष्म है। मानव योनि इतनी सक्षम है कि इसमें हम भगवान का साक्षात्कार भी कर सकते हैं। हमें अपने सभी कोषों का विकास करना है–अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष, आनन्दमय कोष और अन्तमय कोष। मनुष्य योनियों का विकास होता है और इस योनि में हम भगवान का साक्षात्कार भी प्राप्त कर सकते हैं। अपने जीवन का निःश्रेयस कल्याण प्राप्त कर सकते हैं। यहाँ पर श्रीभगवान अर्जुन के माध्यम से समस्त मानव जाति के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

16.21

त्रिविधं(न्) नरकस्येदं(न्), द्वारं(न्) नाशनमात्मनः।
कामः(ख्) क्रोधस्तथा लोभ:(स्), तस्मादेतत्त्रयं(न्) त्यजेत्।।16.21।।

काम, क्रोध और लोभ - ये तीन प्रकार के नरक के दरवाजे जीवात्मा का पतन करने वाले हैं, इसलिये इन तीनों का त्याग कर देना चाहिये।

विवेचन: काम, क्रोध और लोभ यही तीन अवगुण मनुष्य को कामनाओं के व्यसनों में फँसाते हैं। यदि कोई कामना पूर्ण नहीं होती है तो क्रोध बढ़ता है और यदि पूर्ण होती है तो लोभ बढ़ता है। ऐसी प्रवृत्ति के लोग अपना अहित तो करते हैं परन्तु दूसरों को भी हानि पहुँचाते हैं इसलिए भगवान ने काम, क्रोध और लोभ को नर्क का द्वार कहा है। यह तीनों मनुष्य का जीवन-स्तर गिराते हैं और वह परमात्मा से विमुख हो जाता है। श्रीभगवान ने कहा कि इन तीनों अवगुणों का हमें परित्याग करना चाहिए क्योंकि यह मानव की आत्मा का पतन करते हैं। केवल निर्धन व्यक्ति ही चुराता है, ऐसा नहीं है, परन्तु धन के लालच में धनी व्यक्ति भी चुराता है।

स्वामी विवेकानन्द जी ने बहुत ही अच्छी बात कही है -

Heaven and Hell are not things far off;
To be in the company of good is Heaven
And to be in the company of bad is Hell

अर्थात् स्वर्ग और नर्क दूर नहीं हैं,
यदि हम अच्छी सङ्गत में हैं तो स्वर्ग,
और यदि बुरी सङ्गत में हैं तो नर्क है।।

16.22

एतैर्विमुक्तः(ख्) कौन्तेय, तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः(श्) श्रेयस् , ततो याति परां(ङ्) गतिम्।।16.22।।

हे कुन्तीनन्दन ! इन नरक के तीनों दरवाजों से रहित हुआ (जो) मनुष्य अपने कल्याण का आचरण करता है, (वह) उससे परम गति को प्राप्त हो जाता है।

विवेचन: श्रीभगवान कहते हैं कि हे कौन्तेय! यदि कोई व्यक्ति इन तीन द्वारों को पार कर लेता है तो वह मुझे पा लेता है। कामनाएँ पूर्ण होनी चाहिए परन्तु उसी में ही अपना जीवन गँवा देना श्रेयस्कर नही है।

इसी सम्बन्ध में टॉल्सटाय की एक कहानी है-

एक किसान राजा के पास जाता है और वह भूमि की माँग करता है। राजा उसे पूछता है कि कितनी भूमि चाहिए? तो वह कहता है कि उसको बहुत ज़्यादा चाहिए। राजा कहता है कि ठीक है, वह दौड़ कर जितनी भूमि पार करेगा उतनी भूमि उसकी परन्तु उसे सूर्यास्त से पहले वापिस राजा के पास आना होगा तो वह किसान मान गया।

अब वह दौड़ता गया, विश्राम भी नहीं किया। सूर्यास्त होने को था परन्तु उसके मन में लालच आ गया और वापिस जाने को नहीं मुड़ा। उसका गला सूखने लगा और थक भी गया था परन्तु लालचवश और दौड़ता गया। फिर कुछ देर बाद वह गिर गया और वहीं उसके प्राण निकल गए।

इस कहानी से यह शिक्षा मिलती है कि जीवन के अन्तिम क्षणों में भूमि तो मात्र छः गज़ ही चाहिए, परन्तु सञ्चय करने की दौड़ में कब वापिस जाना है उसका ज्ञान ही मनुष्य को नहीं रहता है।अज्ञानवश और लोभवश हम स्वयं का नाश कर लेते हैं।

इस विषय में श्री गुरुजी महाराज ने कहा है कि जीवन विकारों से परिपूर्ण है परन्तु हमें विकारों को नष्ट करने में अधिक नहीं लगना क्योंकि इससे जीवन नकारात्मक हो जाएगा अपितु सकारात्मक दृष्टिकोण रखने से सब विकार दूर हो जाएँगे।

भगवान तुलसीदास जी कहते हैं:-

इति वदति तुलसीदास शंकर, शेष मुनि मन रंजनं ।
मम् हृदय-कंज निवास कुरु, कामादि खलदल गंजनं ॥"

तुलसीदास जी कहते हैं कि राम जी! आप मेरे हृदय में निवास कीजिए क्योंकि आपके आने से सब विकार नष्ट हो जाते हैं। आप अविकारी हो। सद्विचार के आने से मन के सब विकार दूर हो जाते हैं। जब तक जीवन है तब तक साधना करनी चाहिए, यही हमारे जीवन का पाथेय है।

16.23

यः(श्) शास्त्रविधिमुत्सृज्य, वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति , न सुखं(न्) न परां(ङ्) गतिम् ।।16.23।।

जो मनुष्य शास्त्रविधि को छोड़कर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धि (अन्तःकरण की शुद्धि) को, न सुख (शान्ति) को (और) न परमगति को (ही) प्राप्त होता है।

विवेचन: बहुत गम्भीर एवं महत्त्वपूर्ण शब्द है शास्त्र, नियमावली। नियमों का पालन सृष्टि के उन्नयन के लिए अति आवश्यक है। यदि कोई व्यक्ति कामनाओं की पूर्ति हेतु नियमानुसार आचरण नहीं रखता है तो वह आसुरी प्रवृत्ति को जागृत करता है। हम अभिमानवश नियमों का उल्लङ्घन करते हैं और बहुत सारी गलतियाँ कर लेते हैं। बहुत बार ट्रैफिक सिग्नल को तोड़ते हैं और ऐसा करके हम बहुत प्रसन्न होते हैं। इस कारण हमारी भी और राष्ट्र की भी अधोगति होती है। सभी नियमों का उल्लङ्घन करते रहने से मनुष्य को अन्त में न ही सुख प्राप्त होता है और न ही सद्गति प्राप्त होती है। न ही सिद्धि और न ही परम् गति प्राप्त होती है। अन्त समय में ज्ञात होता है कि कितनी गलतियाँ हो गईं।

जब औरंगज़ेब ने महाराष्ट्र पर चढ़ाई की तो शिवाजी महाराज की वीरगति के बाद भी पच्चीस वर्ष तक मराठा सैनिक उससे लड़ते रहे। जब उसका अन्त समय आया तो उसने अपनी किताब में लिखा है कि उसको पता नहीं कितने नर्कों को जाना पड़ेगा

क्योंकि उसने अपना सारा जीवन ही सञ्चयन में बिता दिया, कोई पुण्यकर्म भी नहीं किया।

16.24

तस्माच्छास्त्रं(म्) प्रमाणं(न्) ते, कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं(ङ्), कर्म कर्तुमिहार्हसि।।16.24।।

अतः तेरे लिये कर्तव्य-अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र (ही) प्रमाण है - (ऐसा) जानकर (तू) इस लोक में शास्त्रविधि से नियत कर्तव्य-कर्म करने योग्य है अर्थात् तुझे शास्त्रविधि के अनुसार कर्तव्य-कर्म करने चाहिये।

विवेचन: श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन! तुम शास्त्र निमित्त आचरण करो। शास्त्रों का विधिवत पालन करो और शास्त्र में आस्था रखो। शास्त्रों में बताए गए नियम का पालन करने में ही तुम्हारा हित है। अगर कोई समस्या है तो शास्त्रों में कहे अनुसार उसका नियमानुसार आचरण द्वारा हल भी है।

विद्युत में भी शास्त्र है और विज्ञान में भी शास्त्र है। अध्यात्म में भी शास्त्र है और लौकिक ज्ञान में भी शास्त्र है। जीवन का मर्म ही शास्त्र निहित है। नियमों का पालन करना ही हमारे शास्त्रों में बताया गया है। शास्त्रों में श्रद्धा अति आवश्यक है। नियमावली का पालन करना हर मानव के लिए श्रेयस्कर है और हमें श्रीमद्भगवद्गीता भी भौतिक ज्ञान और नैतिकता से कैसे कर्मों का पालन करना है, इसका ज्ञान देती है। श्रीभगवान कहते हैं कि शास्त्रों में आस्था रखते हुए आचरण करना ही हितकर है, शुभकर है।

शास्त्र म्हणेल जें सांडावें । तें राज्यही तृण मानावें ।
जें घेववी तें न म्हणावें । विषही विरुद्ध ॥ ४६० ॥

सन्त श्री ज्ञानेश्वर जी कहते हैं कि हे अर्जुन! चाहे कोई कितना भी बलशाली हो परन्तु शास्त्रों का पालन अवश्य करना चाहिए। शास्त्र के लिए यदि राज्य भी छोड़ना पड़े या विषपान भी करना पड़े तो करना। न्यायपालिका का भी शास्त्र होता है।

श्रीभगवान कहते हैं कि यदि शास्त्रों के लिए तुम्हें किसी भी चुनौती का सामना करना पड़े तो बेझिझक करना। इसी से तुम्हारा जीवन सुखमय होगा इसलिए शास्त्र विधि से नियमों का पालन करो। श्रीमद्भगवद्गीता कल्याणकारी है और जगत में कल्याण प्राप्त करने और समस्त लोकों के दुःखों का नाश करने का मार्ग बताती है। हमें ऐसी बात माननी चाहिए और शास्त्र निहित आचरण रखना चाहिए। जब कोरोना महामारी आई तो उसके लिए भी नियमावली आई परन्तु तब भी कुछ लोगों ने अभिमान वश नियमों का उल्लङ्घन किया, जिसके भयङ्कर परिणाम विश्व में देखने को मिले। जिसने शास्त्र पढ़ा है, उसके पास हम अपनी समस्या के समाधान हेतु जाते हैं और परमात्मा की प्राप्ति के लिए अपने पथ पर अग्रसर होते हैं।

इसके पश्चात आज के विवेचन सत्र का समापन हुआ और प्रश्नोत्तर सत्र आरम्भ हुआ।

प्रश्नोत्तर:

प्रश्नकर्ता: अनीता दीदी
प्रश्न: सत्रहवें श्लोक का अर्थ फिर से स्पष्ट करें?
उत्तर: इसका अर्थ है कि आसुरी प्रवृत्ति वाले लोग अपने आप को बहुत बड़ा मानते हैं, वह धन और मान के मद में हमेशा चूर रहते हैं। इस मद के कारण उनकी प्राप्ति की चाह हमेशा बढ़ती ही जाती है इसलिए वे हमेशा दिखावे के लिए यज्ञ करते हैं, वे अविधिपूर्वक नाम मात्र के लिए यज्ञ करते हैं, पूजा-पाठ करते हैं। उनका एकमात्र उद्देश्य स्वयं की स्तुति करवाना होता है।

प्रश्नकर्ता: शशि ठाकुर जी
प्रश्न: दुर्गुणों से ध्यान हटाने के लिए और आसुरी गुणों से बचने के लिए अपने बहुत सुन्दर उपाय बताया है, कृपया फिर से स्पष्ट कीजिए?

उत्तर: अगर दुर्गुणों से स्वयं को बचाना है तो उनके बारे में बिल्कुल भी बात भी नहीं करनी है। मन को नकारात्मकता से विमुख कर गुणों के आधान की तरफ लगाएँ। जब हम ऐसा करेंगें तो अपने आप से सद्गुण सङ्क्रमित होना शुरू हो जाएँगे और हम दुर्गुणों से बचे रहेंगे।

प्रश्नकर्ता: एस एन सिंह जी
प्रश्न: क्या ऐसा कोई उपाय है जिससे काम का विचार कभी भी मन में ना आए?
उत्तर: कर्त्तव्य से प्रेरित होकर जो भी कामना हमारे मन में आती है वह भगवान का ही रूप है क्योंकि अगर कामना नहीं होगी तो हमारे जीवन में कोई लक्ष्य ही नहीं होगा। अगर किसी कामना से हमारा तथा दूसरों का भला होता है तो वह कामना गलत नहीं है। श्रीमद्भगवद्गीता हमें सिखाती हैं कि जीवन में भौतिक प्रगति भी होनी चाहिए और कल्याण भी होना चाहिए। भौतिक प्रगति तभी होगी जब मनुष्य के मन में कामना होगी लेकिन कामना को पूरी करते हुए मनुष्य को नैतिकता को छोड़ना नहीं चाहिए। बिना काम के मनुष्य जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जिस तरह अगर आपके बेटे और बेटी विवाह योग्य हो चुके हैं तो उनके विवाह की कामना करना कुछ गलत नहीं है।

सातवें अध्याय में भगवान ने स्वयं कहा है -

**"बलं(म्) बलवतां(ञ्) चाहं(ङ्), कामरागविवर्जितम्।
धर्माविरुद्धो भूतेषु, कामोऽस्मि भरतर्षभ॥७.११॥"**

अर्थात हे भरत श्रेष्ठ! मैं बलवान पुरुषों का काम और आसक्ति रहित बल हूँ। मैं वो काम हूँ जो धर्म या धर्म ग्रन्थों की आज्ञाओं के विरुद्ध नहीं है। किसी पर अत्याचार करते हुए अपने स्वार्थ के लिए अपनी कामनाएँ और वासनाएँ पूरी करना इसको आसुरी प्रवृत्ति माना गया है।

प्रश्नकर्ता: हनुमान प्रसाद बागड़िया जी
प्रश्न: कृपया निष्काम भक्ति के बारे में फिर से बताएँ?
उत्तर: हम प्राय: भगवान से माँगते ही हैं और ऐसे माँगने में कुछ बुराई भी नहीं है क्योंकि अगर हम परमात्मा की ही सन्तान हैं तो अपने पिता से माँगने में किसी तरह की भी दुविधा नहीं होनी चाहिए, लेकिन एक दिन माँगते-माँगते ऐसा भी हो कि आप कहें कि मुझे भगवान अब और कुछ नहीं चाहिए, केवल और केवल मुझे आप ही चाहिए तो ऐसी भक्ति निष्काम भक्ति हो जाती है। जिस प्रकार एक छोटा बालक जब खिलौनों से खेलते-खेलते ऊब जाता है तो फिर उसे और खिलौने नहीं चाहिए, वह माँ को ही पुकारता है। जब भक्ति में इस तरह की अवस्था मनुष्य की हो जाती है तो इसे निष्काम भक्ति कहा जाता है।

प्रश्नकर्ता: अपर्णा पाल चौहान जी
प्रश्न: युद्ध में सेना जब अपने वरिष्ठों के अनुचित उद्देश्यों को जानते हुए भी आज्ञा पालन करते हुए युद्ध करती है तो क्या उन सैनिकों को आसुरी प्रवृत्ति का मानना चाहिए?
उत्तर: जब हम अपने वरिष्ठों की आज्ञा का पालन करते हैं तो इसे कर्त्तव्य पालन की दृष्टि से देखा जाता है और जब हम अपना कर्त्तव्य पालन पूरी निष्ठा से करते हैं और किसी तरह के उद्देश्य को मन में आने नहीं देते तो इस तरह के आचरण से किसी तरह का कोई दोष नहीं लगता, जिस प्रकार जल्लाद को अपराधी व्यक्ति को फाँसी देने से किसी तरह का दोष कभी भी नहीं लगता है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(यँ) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसम्पद्विभागयोगो नाम षोडशोऽध्याय:।।

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'देवासुरसम्पदविभाग योग' नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||

Sum-Hi-16(2_2)-VW-L2Mar24-270424/4740/v1/240429-2214